International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 6, Issue 7, July 2019 |

गांधीजी एवं वर्तमान राजनीति

SHRI P.M. MEENA

Political Science, Govt. College, Rajgarh, Alwar, Rajasthan, India

सार

वर्तमान अस्थिरता के दौर में जहाँ एक ओर कोविड-19 जैसी महामारी लोगों को हताश और बेहाल किये हुए है वहीं दूसरी ओर इसके आर्थिक परिणाम भी लोगों को भविष्य के प्रति आशंकित किये हुए हैं। कभी हाथरस जैसे कांड लोगों को मानवीय मूल्यों पर चिंतन हेतु विवश करते हैं तो कभी ड्रग्स जैसे मामले समाज को झकझोरते हैं। आज संपूर्ण विश्व बाज़ारवाद के दौड़ में शामिल हो चुका है। लालच की परिणति युद्ध की सीमा तक चली जाती है। ऐसे में गांधीवाद की प्रासंगिकता पहले से कहीं अधिक हो जाती है। तो क्या गांधीवाद को अपनाने के लिये हमें टोपी या धोती पहनने की जरूरत है या फिर ब्रह्मचर्य अपनाने या फिर घृणा करने की आवश्यकता है? नहीं, इनमें से कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। बल्कि घृणा को दूर करने के लिये गांधीवाद को अपनाने की जरूरत है।

परिचय

अब प्रश्न यह उठता है कि यह गांधीवाद है क्या? किसी भी शोषण का अहिंसक प्रतिरोध, सबसे पहले दूसरों की सेवा, संचय से पहले त्याग, झूठ के स्थान पर सच, अपने बजाय देश और समाज की चिंता करना आदि विचारों को समग्र रूप से गांधीवाद की संज्ञा दी जाती है। गांधीवादी विचार व्यापक रूप से प्राचीन भारतीय दर्शन से प्रेरणा पाते है और इन विचारों की प्रासंगिकता अभी भी बरकरार है। आज के दौर में जब समाज में कल्याणकारी आदर्शों का स्थान असत्य, अवसरवाद, धोखा, चालाकी, लालच व स्वार्थपरता जैसे संकीर्ण विचारों द्वारा लिया जा रहा है तो समाज सहिष्णुता, प्रेम, मानवता, भाईचारे जैसे उच्च आदर्शों को विस्तृत करता जा रहा है। विश्व शक्तियाँ शस्त्र एकत्र करने की स्पर्धा में लगी हुई है लेकिन एक छोटे से वायरस को हरा पाने में असमर्थ और लाचार साबित हो रही है। ऐसे में विश्व शांति की पुनर्स्थापना के लिये, मानवीय मूलों को पुन: प्रतिष्ठित करने के लिये आज गांधीवाद नए स्वरूप में पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हो उठा है।[1]

गांधी जी धर्म व नैतिकता में अटूट विश्वास रखते थे। उनके लिये धर्म, प्रथाओं व आंडबरों की सीमा में बंधा हुआ नहीं वरन् आचरण की एक विधि थी। गांधी जी के अनुसार, धर्मविहीन राजनीति मृत्युजाल है, धर्म व राजनीति का यह अस्तित्व ही समाज की बेहतरी के लिये नींव तैयार करता है। गांधी जी साधन व साध्य दोनों की शुद्धता पर बल देते थे। उनके अनुसार साधन व साध्य के मध्य बीज व पेड़ के जैसा संबंध है एवं दूषित बीज होने की दशा में स्वस्थ पेड़ की उम्मीद करना अकल्पनीय है।

गांधीवादी विचारधारा महात्मा गांधी द्वारा अपनाई और विकसित की गई उन धार्मिक-
सामाजिक विचारों का समूह है जो उन्होंने पहली बार वर्ष 1983 से 1914 तक दक्षिण अफ्रीका में तथा उसके बाद फिर भारत में अपनाई गई थी।

गांधीवादी दर्शन न केवल राजनीतिक, नैतिक और धार्मिक है, बल्कि पारंपरिक और आधुनिक तथा सरल एवं जटिल भी है। यह कई पश्चिमी प्रभावों का प्रतीक है, जिनको गांधीजी ने उजागर किया था, लेकिन यह प्राचीन भारतीय संस्कृति में निहित है तथा सार्वभौमिक नैतिक और धार्मिक सिद्धांतों का पालन करता है। गांधीजी ने इन विचारधाराओं को विभिन्न प्रेरणादायक स्रोतों जैसे-
भगवतगीता, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, बाइबिल, गोपाल कृष्ण गोखले, टॉलस्टॉय, जॉन रस्किन आदि से विकसित किया। टॉलस्टॉय की पुस्तक 'द किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू' का महात्मा गांधी पर गहरा प्रभाव था। गांधीजी ने रस्किन की पुस्तक 'अंटू दिस लास्ट' से 'सर्वोदय' के सिद्धांत को ग्रहण किया और उसे जीवन में उतारा।

गांधीजी ने आजादी की लड़ाई के साथ-साथ छुआछूत उन्मूलन, हिन्दू-
मुस्लिम एकता, चरखा और खादी को बढ़ावा, ग्राम स्वराज का प्रसार, प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा और परंपरागत चिकित्सीय ज्ञान के उपयोग सहित तमाम दूसरे उद्देश्यों पर कार्य करना निरंतर जारी रखा। सत्य के साथ गांधीजी के प्रयोगों ने उनके इस विश्वास को पक्का कर दिया था कि सत्य की सदा विजय होती है और सही रास्ता सत्य का रास्ता ही है। आज मानवता की मुक्ति सत्य का रास्ता अपनाने से ही है। गांधी जी सत्य को ईश्वर का पर्याय मानते थे। गांधीजी का मत था कि सत्य सदैव विजयी होता है।

और अगर मनुष्य का संघर्ष सत्य के लिये है तो हिंसा का लेशमात्र उपयोग किये बिना भी वह अपनी सफलता सुनिश्चित कर सकता है।

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 6, Issue 7, July 2019 |

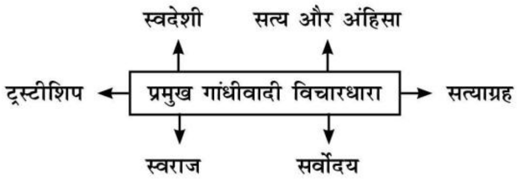

1.
सत्य: गांधीजी सत्य के बड़े आग्रही थे। वे सत्य को ईश्वर मानते थे। सत्य उनके लिये सर्वोपरि सिद्धांत था। वे वचन और चिंतन में सत्य की स्थापना का प्रयत्न करते थे।[2,3]

लेकिन वर्तमान समय में देखा जाए तो राजनीतिज्ञ, मंत्रीगण अपने पद की शपथ ईश्वर को साक्षी मानकर करने के बावजूद गलत काम करने से पीछे नहीं हटते। अपने कर्मों के पालन के समय वे सत्य को भी नकार देते हैं। अगर गांधीवादी सिद्धांतों का सही तरह से पालन किया जाए तो देश नवनिर्माण की दिशा में आगे बढ़ चलेगा।

2.
अहिंसा: गांधीजी के अनुसार मन, वचन और शरीर से किसी को भी दु:ख न पहुँचाना ही अहिंसा है। गांधीजी के विचारों का मूल लक्ष्य सत्य एवं अहिंसा के माध्यम से विरोधियों का हृदय परिवर्तन करना है। अहिंसा का अर्थ ही होता है प्रेम और उदारता की पराकाष्ठा। गांधी जी व्यक्तिगत जीवन से लेकर वैश्विक स्तर पर 'मनसा वाचा कर्मणा' अहिंसा के सिद्धांत का पालन करने पर बल देते थे। आज के संघर्षरत विश्व में अहिंसा जैसा आदर्श अति आवश्यक है। गांधी जी बुद्ध के सिद्धांतों का अनुगमन कर इच्छाओं की न्यूनता पर भी बल देते थे।

यदि इस सिद्धांत का पालन किया जाए तो आज क्षुद्र राजनीतिक व आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये व्याकुल समाज व विश्व अपनी कई समस्याओं का निदान खोज सकता है। आज संपूर्ण विश्व अपनी समस्याओं का हल हिंसा के माध्यम से ढूंढना चाहता है। वैश्वीकरण के इस दौर में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा ही खत्म होती जा रही है। अमेरिका, चीन, उत्तर कोरिया, ईरान जैसे देश हिंसा के माध्यम से प्रमुख शक्ति बनने की होड़ एवं दूसरों पर वर्चस्व के इरादे से हिंसा का सहारा लेते हैं। इस हेतु वैश्विक रूप से शस्त्रों की होड़ लग गई है। यह अंधी दौड़ दुनिया को अंतत: विनाश की ओर ले जाता है। आज अहिंसा जैसे सिद्धांतों का पालन करते हुए विश्व में शांति की स्थापना की जा सकती है जिसकी आज पूरे विश्व को आवश्यकता है।

3.
सत्याग्रह: सत्याग्रह का अर्थ है सभी प्रकार के अन्याय, उत्पीड़न और शोषण के खिलाफ शुद्धतम आत्मबल का प्रयोग करना। यह व्यक्तिगत पीड़ा सहन कर अधिकारों को सुरक्षित करने और दूसरों को चोट न पहुँचाने की एक विधि है। सत्याग्रह की उत्पत्ति उपनिषद, बुद्ध-महावीर की शिक्षा, टॉलस्टॉय और रस्किन सहित कई अन्य महान दर्शनों में मिलती है। गांधीजी का मत था कि निष्क्रिय प्रतिरोध कठोर-से-कठोर हृदय को भी पिघला सकता है। वे इसे दुर्बल मनुष्य का शस्त्र नहीं मानते थे। उनके अनुसार शारीरिक प्रतिरोध करने वाले की अपेक्षा निष्क्रिय प्रतिरोध करने वाले में कहीं ज्यादा साहस होना चाहिये।[4,5]

आज के समय में सत्याग्रह का प्रयोग विभिन्न स्थानों एवं परिस्थितियों पर सुसंगत एवं तार्किक प्रतीत होता है। राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी नीतियों, आदेशों से मतभेद की स्थिति में विरोध हेतु सत्याग्रह का प्रयोग कहीं श्रेयस्कर है। आत्मबल शारीरिक बल से अधिक श्रेष्ठ होता है। बुराई के प्रतिकार के लिये यदि आत्मबल का सहारा लिया जाए तो मौजूदा परेशानियाँ दूर की जा सकती हैं।

4. सर्वोदय: सर्वोदय शब्द का अर्थ है 'सार्वभौमिक उत्थान' या सभी की प्रगति। यह शब्द पहली बार गांधीजी ने राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर जॉन रस्किन की पुस्तक 'अंटू दिस लास्ट' में पढ़ा था। सर्वोदय ऐसे वर्गविहीन, जातिविहीन और शोषण-मुक्त समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को अपने सर्वांगीण विकास का साधन और अवसर मिले। ऐसे समाज में वर्ण, धर्म, जाति, भाषा आदि के आधार पर किसी समुदाय का न तो संहार हो और न ही बहिष्कार। सर्वोदय शब्द गांधीजी द्वारा प्रतिपादित एक ऐसा विचार है जिसमें 'सर्वभूत हितं रता:' की भारतीय कल्पना, सुकरात की 'सत्य साधना' और रस्किन की 'अंत्योदय' की अवधारणा सब कुछ सम्मिलित है। गांधीजी

ने कहा था "मैं अपने पीछे कोई पंथ या संप्रदाय नहीं छोड़ना चाहता हूँ।" यही कारण है कि सर्वोदय आज एक समर्थ जीवन, समग्र जीवन और संपूर्ण जीवन का पयार्य बन चुका है।

आज के दौर में पूरा विश्व एक ऐसे ही समाज की खोज में है जहाँ शोषण , वर्ग, जाति आदि की कोई जगह न हो। कहीं रोहिंग्या तो कहीं शिया और सुन्नी के नाम पर हिंसा हो रही है तो कहीं आतंक फैलाया जा रहा है। एक वर्ग दूसरे का शोषण कर रहा है जिससे समाज में अव्यवस्था फैल रही है। अगर गांधीजी के सर्वोदय की संकल्पना साकार होती है तो संपूर्ण विश्व एक परिवार का रूप ले सकता है।

5. स्वराज: हालाँकि स्वराज शब्द का अर्थ स्व-शासन है, लेकिन गांधीजी ने इसे एक ऐसी अभिन्न क्रांति की संज्ञा दी जो कि जीवन के सभी क्षेत्रों को समाहित करती है। गांधी जी के लिये स्वराज का अर्थ व्यक्तियों के स्वराज (स्व-शासन) से था और इसलिये उन्होंने स्पष्ट किया कि उनके लिये स्वराज का मतलब अपने देशवासियों हेतु स्वतंत्रता है और अपने संपूर्ण अर्थों में स्वराज स्वतंत्रता से कहीं अधिक है।

आत्मनिर्भर व स्वायत्त ग्राम पंचायतों की स्थापना के माध्यम से ग्रामीण समाज के अंतिम छोर पर मौजूद व्यक्ति तक शासन की पहुँच सुनिश्चित करना ही गांधी जी का ग्राम स्वराज सिद्धांत था। आर्थिक मामलों में भी गांधीजी विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था के माध्यम से लघु, सूक्ष्म व कुटीर उद्योगों की स्थापना पर बल देते थे। उनका मत था कि भारी उद्योगों की स्थापना के पश्चात् इनसे निकलने वाली जहरीली गैसें व धुंआ पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं, साथ ही बहुत बड़े उद्योगों का अस्तित्व श्रमिक वर्ग के शोषण का भी मार्ग तैयार करता है। आज इस महामारी के दौर में जब पूरे विश्व को एक बार फिर आर्थिक मंदी की ओर जाने का खतरा दिखाई दे रहा है ऐसे में इन कुटीर उद्योगों की स्थापना गरीब श्रमिकों के लिये आशा की किरण साबित होगी।[6,7]

6. ट्रस्टीशिप: ट्रस्टीशिप एक सामाजिक-आर्थिक दर्शन है जिसे गांधीजी द्वारा प्रतिपादित किया गया था। यह अमीर लोगों को एक ऐसा माध्यम प्रदान करता है जिसके द्वारा वे गरीब और असहाय लोगों की मदद कर सकें। यह सिद्धांत गांधीजी के आध्यातिमक विकास को दर्शाता है, जो कि थियोसोफिकल लिटरेचर और भगवतगीता के अध्ययन से उनमें विकसित हुआ था। वर्तमान समय में गांधीजी की यह विचारधारा काफी प्रासंगिक है जब विश्व में गरीबी और भूखमरी चारों तरफ अपना साया फैलाये खड़ी है। गांधीजी का यह विचार कि धन व उत्पादन के साधनों पर सामूहिक नियंत्रण की स्थापना हेतु न्यास जैसी व्यवस्था स्थापित की जाए, काफी मायने रखती है।

7. स्वदेशी: स्वदेशी शब्द संस्कृत से लिया गया है और यह संस्कृत के दो शब्दों का एक संयोजन है। 'स्व' का अर्थ है स्वयं और देश का अर्थ देश ही है अर्थात् अपना देश। स्वदेशी का शाब्दिक अर्थ अपने देश से लिया जाता है परंतु अधिकांश संदर्भों में इसका अर्थ आत्मनिर्भरता के रूप में लिया जा सकता है। स्वदेशी राजनीतिक और आर्थिक दोनों तरह से अपने समुदाय के भीतर ध्यान केंद्रित करता है। यह समुदाय और आत्मनिर्भरता की अन्योन्याश्रिता है। गांधीजी का मानना था कि इससे स्वतंत्रता (स्वराज) को बढ़ावा मिलेगा, क्योंकि भारत का ब्रिटिश नियंत्रण उनके स्वदेशी उद्योगों के नियंत्रण में निहित था। स्वदेशी अभियान भारत की स्वतंत्रता की कुंजी थी और महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रमों में चरखे द्वारा इसका प्रतिनिधित्व किया गया था।

आज जब अमेरिका एवं चीन जैसे देश व्यापार-युद्ध के माध्यम से अपने देश को सशक्त और दूसरे देशों की आर्थिक व्यवस्था को कमज़ोर करने पर तुले हैं। ऐसी स्थिति में स्वदेशी की यह संकल्पना देश के घरेलू उद्योगों और कारीगरों हेतु एक वरदान की भांति सिद्ध होगा।

गांधीजी शिक्षा के संदर्भ में अध्ययन व जीविका कमाने का कार्य एक साथ करने पर बल देते थे। आज जब बेरोजगारी देश की इतनी बड़ी समस्या है तब गांधीजी के इस विचार को ध्यान में रखकर शिक्षा नीतियाँ बनाना लाभप्रद होगा। गांधीजी का राष्ट्र का विचार भी अत्यंत प्रगतिशील था। उनका राष्ट्रवाद 'वसुधैव कुटुम्बकम' के विस्तार से प्रेरित था। वे राष्ट्रवाद की अंतिम परिणति केवल एक राष्ट्र के हितों तक सीमित न मानते हुए उसे विश्व कल्याण की दिशा में विस्तृत करने पर बल देते थे। आजकल राष्ट्रवाद का अतिवादी स्वरूप होता देखकर गांधीवादी राष्ट्रवाद सटीक लगता है।

हम पाते हैं कि गांधीजी के विचार शाश्वत है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने जमीनी तौर पर अपने विचारों का परीक्षण किया और जीवन में सफलता अर्जित की जो न सिर्फ स्वयं के लिये अपितु पूरे विश्व के लिये थी। आज दुनिया गांधी के मार्ग को सबसे स्थायी रूप में देखती है।[8,9]

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 6, Issue 7, July 2019 |

विचार-विमर्श

भारतीय इतिहास के अत्यंत विस्फोटक दौर में महात्मा गांधी सबसे विस्फोटक हस्तक्षेप करते हैं और राजनीति की आधार-भूमि बदल देते हैं |

वे राजनीति का मानवीय चेहरा उजागर ही नहीं करते हैं बल्कि उसका पूरा तंत्र व कार्यक्रम भी हमारे सामने रखते हैं |

"बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम!" शुरु करता हूं अल्लाह के नाम से !

इस तरह अपनी बात शुरु करने का मेरा मकसद न तो अपनी मुस्लिम पहचान को उजागर करने का है, न ही मैं गांधी पर कोई तथाकथित मजहबी प्रवचन या वाज करने की कोशिश करना चाहता हूं | इसके बरअक्स अल्लाह के नाम से अपनी बात शुरु करके मैं उस सवाल पर दोबारा लौटना चाहता हूं, जो आजकल जैसे ही खतरनाक राष्ट्रवादी माहौल में गांधी ने 1909 में पूछी थी | उनका सवाल था : क्या आधुनिक राष्ट्रवाद के नाम पर होने वाली राजनीति में दया-धर्म जैसे एहसास के लिए कोई स्थान है ?

यकीनन यह गांधी का सवाल है; मेरा मानना है कि उनके लेखन में और उनके अमल में इस सवाल के अनेक बेहतरीन जवाब मिल सकते हैं | लेकिन यह सवाल इतनी सीधी तरह से हमारा सवाल नहीं बन सकता | अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' में जिस बातचीत के जरिये गांधी इस सवाल तक पहुंचते हैं वैसी बातचीत न तो हम करते हैं और शायद करना भी नहीं चाहते हैं | तब बिस्मिल्लाह किस काम की ?

मैं अपने ऐसे दो जाती तजुर्बे ब्यान करना चाहता हूं, जो शायद मेरे बिस्मिल्लाह पढ़ने के अमल को प्रासंगिक बना दें | मैं पुरानी दिल्ली का रहने वाला हूं और राजघाट से मेरा एक स्वाभाविक रिश्ता रहा है | बचपन की एक घटना है, शायद सातवीं या आठवीं क्लास की | ईद के अगले दिन अपने नए जूते पहन कर मैं स्कूल पहुंचा | नए जूते, ईद की खुमारी और क्रिकेट खेलने की लगन में बदहवास हम कुछ बच्चे राजघाट के सामने वाले पार्क में खेलने जा पहुंचे | खेल के बाद ठंडा पानी पीने की जरूरत हमें राजघाट के इलेक्ट्रिक पियाऊ तक ले गई | पानी पिया और सोचा कि चलो थोड़ा सुस्ता लिया जाए | हमने समाधि के चारों तरफ बने गलियारों में बैठने का फैसला किया | पर समस्या नए जूतों की थी ! समाधि के बाहर जूते रखना यानी उनके चोरी होने का खतरा | वैसे भी 1980 में राजघाट सिर्फ 2 अक्टूबर को ही जिंदा होता था | यह बात दूसरी है कि 1985 के बाद समाधियों की सुरक्षा राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न बन गई !

बहरहाल, हम जूते अंदर ले गए और एक गलियारे में जाकर बैठ गए | 10 मिनट भी न बीते थे कि तीन-चार चौकीदारों ने हमें आ दबोचा | उन्होंने पहले तो हमें दो-तीन थप्पड़ रसीद किए, फिर बताया कि हमारा गुनाह क्या था | यह अमल यहीं खत्म नहीं हुआ | हमें औपचारिक सजा दिलवाने के मकसद से कर्मठ गांधीवादी चौकीदार हमें समाधि के दफ्तर में मौजूद एक अधिकारी के पास ले गए | अधिकारी अहिंसावादी निकले | उन्होंने हमें थप्पड़ नहीं मारा | काफी प्यार से समझाया कि समाधि रसोईघर जैसी जगह है, जहां चप्पल-जूते ले जाना अच्छी बात नहीं है | हम इस तर्क से पूरी तरह सहमत नहीं हुए | हमने अपने नये जूतों की दुहाई देकर, जूते अंदर ले जाने की वजह बताने की कोशिश की | जिरह 5 मिनट भी न चली थी कि अहिंसक गांधीवादी अधिकारी विकराल सरकारी गांधीवादी में परिवर्तित हो गए और उन्होंने चिल्ला कर कहा - "ये ही नियम है | और आगे से ऐसा हुआ तो तुम्हें सीधे पुलिस के हवाले कर दूंगा | दफा हो जाओ !"

इस प्रसंग में वे अधिकारी और चौकीदार कोई गलत बात नहीं कर रहे हैं | वे नियमबद्ध आधुनिक राज्य की नियमनप्रियता की प्रतीक हैं | दूसरी तरफ हम बच्चे, हमारे नए जूते और उनसे जुड़े एहसास! हम भी गलत नहीं हैं | तो फिर गलत क्या है ? मैं गांधी में इस गलत को तलाशना चाहता हूं |

मेरा दूसरा तजुर्बा कुछ साल पहले का है | मैंने गांधी पर आयोजित एक कांफरेंस में परचा पढ़ा था | सेमिनार के बाद के एक मशहूर गांधी-विद्वान और कार्यकर्ता मुझसे स्वयं आकर मिले | मुझे नहीं मालूम कि उन्हें मेरा परचा पसंद आया था या मेरा मुसलमान नाम लेकिन उन्होंने मुझे बधाई दी और पूछा कि देश में मेरे जैसे कितने मुस्लिम विद्वान और कार्यकर्ता हैं, जो नयी गांधीवादी राजनीति में सक्रिय हो सकते हैं ?

प्रश्न अजीब था | मैं न तो कोई गांधी-विद्वान हूं और न ही कोई सियासी वोलंटीयर | मैंने कहा कि मेरी रूचि इस तरह के विषय पर सिर्फ शोध करने में है | वैसे भी आजादी के बाद मुसलमानों के बीच गांधी की पैठ पर कोई व्यवस्थित काम नहीं हुआ है | हमारे पास कुछ बेहद विरोधाभासी किस्से-कहानियां और यादें हैं, जिनके सहारे इस विषय पर बात होती रहती है |

इस तर्क का समर्थन करते हुए इन विद्वान ने मुझसे ऐसे ही किसी किस्से के बारे बताने के लिए कहा | मैंने बताया कि मेरी नानी का परिवार बंटवारे के बाद दिल्ली में ही रह गया | जब भी हम नानी से सन 47 की बात सुनते हैं तो नानी नेहरु का नाम बेहद अदब और एहतराम से लेंती है | लेकिन जब भी गांधी पर बात होती तो वे या चुप हो जाती या फिर एक दर्द भरे गुस्से से कहती: उन्होंने मुसलमानों को मरवाया है !"

दूसरी तरफ इससे बिलकुल उलटी भी तस्वीर है। मेरी पत्नी की एक वृद्ध महिला रिश्तेदार से बातचीत में हमें पता लगा कि बुलंदशहर के मुस्लिम बहुल गांवों में गांधी की मौत के 40 दिन बाद मुस्लिम रिवाजों से उनका चालीसवां हुआ था और इन चालीस दिनों तक लोगों ने मातम मनाया था।

मेरा मत है कि गांधी से जुड़े इस तरह के विरोधाभासों पर काम हो। इतनी बात सुनकर उन गांधीवादी विद्वान के तास्सुरात बदल गए। वे मुझे समझाने लगे कि क्यों मेरी नानी गलत है और वे दूसरी महिला सही। धीरे-धीरे बातचीत में तल्खी आने लगी। वे गांधीवादी विद्वान गलत नहीं हैं। उनका उद्देश्य सही है। वे अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता के प्रति ईमानदार हैं। वे नहीं चाहते कि इस माहौल में, जब कि गांधी का इस्तेमाल मुस्लिम-विरोध तक हो रहा है, इस तरह के उलझे हुए सवालों को सार्वजनिक किया जाए। लेकिन मैं भी गलत नहीं हूं। मेरे शक-शुबहा जायज हैं। मैं बिना शोध किए यह नहीं मान सकता कि गांधी के प्रति लोगों का केवल एक नजरिया है - सिर्फ और सिर्फ श्रद्धा, विश्वास है। एक शोधार्थी के नाते मेरा तो काम ही शक की बुनियाद पर टिका है। फिर गांधी का अपना तरीका भी रहा ही कि वे खुद, गीता सार में कहते हैं कि संदेह रहते विश्वास करना धर्म नहीं हो सकता है।

विश्वास के लिए अनुभव और अनुभव के लिए प्रयोग हमें एक ऐसे सत्य से रू-ब-रू कराते हैं, जिसे महसूस किया जा सकता है, जिसमें बदलाव की गुंजाइश होती है, और जो रोजमर्रा की व्यावहारिक जिंदगी की पेचीदगियों को अपने में समा लेने की क्षमता रखता है।[10]

शायद 1909 में गांधी आधुनिक राजनीति के परिप्रेक्ष्य में इसी दया-धर्म के सच की खोज का आह्वान कर रहे हैं। इसी तरह के प्रश्नों से उलझते हुए मुझे लगता है कि चंपारण सत्याग्रह से भारत छोड़ो आंदोलन तक की अलग रूपरेखा खींची जा सकती है।

मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मेरी रुचि 'हिंद स्वराज' में मौजूद पाठक नामक काल्पनिक पात्र में बिलकुल नहीं है। न ही मैं अपने को इस काबिल समझता हूं कि गांधी की तरह पूरे आत्मविश्वास के साथ संपादक बन जाऊं और एक नया 'हिंद स्वराज' लिख दूं। मैं 'हिंद स्वराज' की तर्क पद्धति में दिलचस्पी रखता हूं।

बातचीत विमर्श बनाती है और विमर्श से ही तर्कों का निर्माण होता है। जरूरत है बातचीत और अनुभव से नैतिक निर्णय के निर्माण की। यहां मैं अकील बिलग्रामी का हवाला देना चाहूंगा। अपने एक लेख में वे कहते हैं कि गांधी को समझने के लिए नैतिक आलोचना और नैतिक निर्णय के बीच के अंतर को समझना जरूरी है। नैतिक आलोचना का अर्थ है किसी भी परिघटना या विचार की अपने तयशुदा नैतिक मूल्यों के आधार पर की जाने वाली आलोचना।

लेकिन नैतिक निर्णय का मतलब है उस विचार को या घटना को अपने ऊपर लागू करना, उसे जीना और फिर एक तर्क या निर्णय पर पहुंचना। दूसरे शब्दों में कहें तो आलोचना को महज आलोचना तक सीमित करना विमर्श का अंत है जबकि आलोचना से निर्णय पर पहुंचना एक प्रक्रिया, जिसे गांधी बेहद सटीक शब्दों में 'सत्याग्रह' कह रहे हैं।

गांधी कोई सत्याग्रही वैंगार्ड नहीं हैं जिसका काम क्रांति की अगुआई करना है बल्कि सत्याग्रही का मकसद अपने को अपने आप से बाहर लाना है, अपने विचारों को खोलना है और ऐसे नैतिक निर्णयों का निर्माण करना है, जो उसके स्वयं के जीवन को सामाजिक अर्थ दे सकें।

सवाल पूछा जा सकता है कि क्या गांधी की इस पद्धति के हवाले से हम कहीं गांधीवाद और गांधीवादी राजनीति के कुछ मूल स्रोत खोजने की कोशिश तो नहीं कर रहे ?

गांधी जैसे चिंतक को कुछ स्रोत-बिंदुओं तक सीमित करना बेहद खतरनाक काम है। वह भी तब जब कि वे स्वयं इस तरह के वैचारिक अमल का खुला विरोध करते नजर आते हैं।

1945 में नेहरु को लिखे एक खत में गांधी कहते हैं:

"मैंने कहा है कि 'हिंद स्वराज' में मैंने जो लिखा है उस राज्यपद्धति पर मैं बिलकुल कायम हूं। यह सिर्फ कहने की बात नहीं है, लेकिन जो चीज मैंने सन् 1909 में लिखी है उसी चीज का सत्य मैंने अनुभव से आज तक पाया है। आखिर मैं उसे मानने वाला एक ही रह जाऊं, उसका मुझको जरा-सा भी दुख न होगा क्योंकि मैं सत्य जैसा पाता हूं उसका ही साक्षी बन सकता हूं। 'हिंद स्वराज' मेरे सामने नहीं है। अच्छा है कि मैं उसी चित्र को आज अपनी भाषा में खींचूं। पीछे वह चित्र सन् 1909 जैसा ही है या नहीं, उसकी मुझे दरकार न रहेगी, न तुम्हें रहनी चाहिए। आखिर मैंने पहले क्या कहा था, उसे सिद्ध करना नहीं है। आज मैं क्या कहता हूं, वही जानना आवश्यक है।"[2,3]

'हिंद स्वराज' ऐसी किताब है जिसमें गांधी ने कभी कोई तरमीम करने की जरूरत नहीं समझी। उनका कहना था कि यदि एक ही विषय पर उनके दो विरोधाभासी लेखन मिलें तब उनकी उसी राय को सही माना जाए, जो समय-क्रम में बाद के किसी लेख में लिखी गई हो। लेकिन इस खत में वे एक कदम आगे जाकर 'हिंद स्वराज' पर भी एक सवाल उठाते देखे जा सकते हैं। 'हिंद स्वराज' उनके लिए एक रूपरेखा है, जिसके जरिए एक अलग तरीके का चित्र खींचना मुमकिन भी है और जरूरी भी।

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 6, Issue 7, July 2019 |

इस खत की दूसरी अहम बात है नैतिक निर्णय का खुलापन | गांधी कहते हैं कि 'हिंद स्वराज' की प्रासंगिकता उनके अनुभव से ताल्लुक रखती है | इसलिए वे इसकी रूपरेखा को सही मान रहे हैं | लेकिन 'हिंद स्वराज' की स्वीकार्यता का अर्थ यह नहीं हैं कि इस किताब में कोई राजनीतिक सिद्धांत प्रतिपादित हुआ है, बल्कि यहां एक अनुभवनिष्ठ प्रक्रिया का जिक्र है जिसका अपना एक नैतिक मूल्य है | तभी तो गांधी कहते हैं: आधुनिक शास्त्र की कदर करते हुए पुरानी बातों को मैं आधुनिक शास्त्र की निगाह से देखता हूं तो पुरानी बात नये लिबास में मुझे बहुत मीठी लगती है |"[4,5]

दूसरा उदाहरण गांधी के राजनीतिक अमल की अप्रत्याशित प्रवृत्ति से है | गांधी पर अकसर आरोप लगाया जाता है कि उनके आंदोलन अप्रत्याशित होते थे, जो न सिर्फ सरकार को बल्कि उनके अपने साथियों को भी हैरान कर दिया करते थे | अपने दक्षिण अफ्रीका के संघर्षों और प्रयोगों का जिक्र करते हुए गांधी एक स्थान पर लिखते हैं: सत्याग्रह की खूबी यह है कि यह मनुष्य तक स्वयं आता है, यह सद्गुण सत्याग्रह के सिद्धांत में अंतर्निहित है | धर्मयुद्ध में किसी भी पक्ष को छिपाने की जरूरत नहीं होती, असत्य नहीं होता, मक्कारी नहीं होती | पहले से तयशुदा रणनीति के आधार पर किया गया संघर्ष हकपरस्त तहरीक नहीं हो सकता | सच्चे संघर्ष में ईश्वर स्वयं अभियान की नीति निर्धारित करता है और स्वयं ही धर्मयुद्ध का संचालन करता है |

इससे साफ है कि गांधी के संघर्ष, उनकी राजनीति और उनके दया धर्म का सार उनके अपने संदर्भ में लिप्त है | वे अपने उस आज का अहम हिस्सा है, जिसे हम 1917 से 1948 तक का इतिहास कहकर छुट्टी पा लेते हैं |

अगर गांधीवाद की खोज गांधी को हमसे दूर ले जाती है, अगर गांधी के अनुभव हमें सिर्फ उन संदर्भलिप्त नैतिक की तरफ ले जाते हैं जो अपने आप में बेहद महीन और लचीले हैं, तब वह क्या संभव तरीका हो सकता है जिसके जरिये गांधी हमारे समकालीन बन सकते हैं ?

गांधी को अपना समकालीन बनाने की कवायद करने के लिए हम चार संभव प्रयास कर सकते हैं -

1. ऐसे मुद्दों की तलाश, जो हमारे आज के मूल प्रश्न के रूप में उभर रहे हों,
2. अपने आज के इन सवालों की रोशनी में ऐसी ही मिलते-जुलते संदर्भ तलाशना, जिनका सामना गांधी ने किया हो,
3. अपने प्रश्नों को हल करने की पद्धति का निरूपण;
4. गांधी की इन विविध पद्धतियों के सृजनात्मक अध्ययन के जरिये अपने जवाबों का निर्माण |

मेरे अंदर का पेशेवर शोधार्थी पहले तीन चरणों तक जाने में कोई झिझक महसूस नहीं करता है पर इस प्रयास का चौथा कदम थोड़ा पेचीदा है | मैं इस पक्ष पर बाद में लौटूंगा, फिलहाल बात की जाए हमारे युग के मूल प्रश्नों की |

मूल प्रश्नों का चुनाव इतना आसान काम नहीं है | एक व्यक्ति या समूह के लिए जो मुद्दा मूल प्रश्न हो सकता है, वही किसी दूसरे समुदाय के लिए बिलकुल बेबुनियाद हो सकता है | यह भी कहा जा सकता है कि मूल प्रश्न का पूरा विचार ही गलत है |

गांधी अपने लेखन में इस बात को बेहद महत्त्व देते दिखते हैं | उनके दो मुख्य पुस्तकें 'हिंद स्वराज' और 'रचनात्मक कार्यक्रम' इस मामले में उल्लेखनीय हैं | इन किताबों में विषयों का चुनाव और उनका क्रम बेहद दिलचस्प है | गांधी बार-बार याद दिलाते हैं कि क्यों कोई बात पहले की जा रही है और क्यों किसी बात को केहने के लिए भूमिका बांधने की जरुरत है | गांधी यह भी कहते हैं कि जिन सवालों को वे मूल प्रश्न कह रहे हैं उनका चुनाव गांधी का अपना है और वे इन सवालों को किसी दूसरे व्यक्ति या समुदाय पर थोपने के पक्षधर नहीं हैं | गांधी की आत्मकथा की भूमिका में यह खुलासा बेहद साफ मिलता है |[6,7]

गांधी को समकालीन बनाने के प्रयास की दूसरी शर्त यह है कि वैसा ही कोई सवाल या उससे मिलता-जुलता मुद्दा हम लें, जो गांधी के लिए भी मूल प्रश्न रहा हो |

यह शर्त मूल प्रश्न की हमारी तलाश को थोड़ा आसान और व्यवस्थित कर देती है | हमारे पास हमारा आज भी है और गांधी का आज भी | हमारे आज के बिखराव की अपनी विशिष्टता है, जिसे हम वर्तमान कहकर एक परिधि में बांधने की कोशिश करते हैं | इसके बरअक्स गांधी का आज एक व्यवस्थित इतिहास बन चुका है, जिसमें एक शुरुआत है और एक अंत भी है | सरकारी नारा 'संकल्प से सिद्धि,' जिसे हमारे प्रधानमंत्री ने बड़े उत्साह से प्रतिपादित किया है, इसी इतिहास-बोध का उदाहरन है | इसे सुनकर ऐसा लगता है कि मानो 1942 में ही तय हो चुका था कि 1947 में क्या होगा ! गांधी अपने आज को इतिहास की इस स्थूल और बासी समझ से परे रखते हैं | वे 'हिंद स्वराज' में कहते हैं: "हिस्टरी अस्वाभाविक बातों को दर्ज करती हैं | सत्याग्रह स्वाभाविक है, इसलिए उसे दर्ज करने की जरूरत ही नहीं है |" (हिंद स्वराज, 1949, पृ. 63)

इतिहास-मुक्त गांधी और हमारे आज के विमर्श का सम्मिलन कुछ ऐसे मुद्दों की ओर इशारा करता है, जो उलझे हुए भी हैं और जिन पर बातचीत भी नहीं होती है | ये सवाल हैं लोकतांत्रिक संस्थाओं और सत्याग्रह की राजनीति के अंतर्संबंधो के |

क्या चुनी हुई लोकतांत्रिक संस्थाओं में एक आम भारतवासी की भागीदारी का अर्थ सिर्फ और सिर्फ वोट डालना है ? लोकतंत्र में विरोध की राजनीति के लिए कितनी गुंजाइश है ? क्या चुनी हुई सरकार का विरोध करना लोकतंत्र का विरोध है ? क्या इस लोकतंत्र

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 6, Issue 7, July 2019 |

में उस दया-धर्म के लिए कोई जगह है जिसकी चर्चा गांधी 'हिंद स्वराज' में करते हैं ? ये प्रश्न मेरी अपनी आज की समझ और गांधी के लेखन की मेरी निजी व्याख्या से निकले हैं इसलिए मैं भी गांधी की तरह अनुरोध करता हूं कि इस सवालों को आरोपित सत्य के रूप में न देखा जाए | मुझे लगता है कि हम इस बहस में न पड़ें कि ये मूल प्रश्न हैं या नहीं, बल्कि इस बात को टटोला जाए कि इन सवालों के जवाब तलाशने का व्यापक तरीका क्या हो ? मेरा मत है कि इसकी शुरुआत हमारी आज की स्वीक्रत राजनीतिक नैतिकता से करना जरूरी है |

भारतीय लोकतंत्र और उसमें विरोध की राजनीति को समझने के लिए हमें भारतीय संविधान को अलग नजरिए से देखना होगा | मेरा मत है कि संविधान के विचार, उसके मूल्य और उसमें मौजूद शक्तियों के बंटवारे के बीच के फर्क और अंतर्संबंधो को रेखांकित करना बेहद जरूरी है | हमारा संविधान कुछ बुनियादी मानवीय विचारों पर आधारित है | ये विचार-मूल्य स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा, सामाजिक बराबरी और मजहबी आजादी सिद्धांत के रूप में काम करते हैं ताकि लोकतांत्रिक संस्थाओं और नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य निर्धारित किए जा सकें | शक्तियों के इसी बंटवारे के आधार पर सरकार बनती है, कानून बनते हैं और उनको लागू करने के प्रावधानों का विवेचन होता है; यानी सरकार और कानून उन मूल्यों को अमली जामा पहनाते हैं जो मानवीय हैं, न कि सरकारी |

निस्संदेह भारतीय संविधान एक उम्दा दस्तावेज है, जो हमारी राज्य-व्यवस्था को एक कानूनी परिधि में बांधता है | लेकिन संविधान कोई पवित्र किताब नहीं हो सकता | यह एक मानव-निर्मित दस्तावेज है, जो एक खास राजनीतिक संदर्भ में अस्तित्व में आया | इसकी सफलता का मूल कारण इसका लचीलापन है | वास्तव में संविधान में संशोधन और परिवर्तन करने की गुंजाइश ने ही इसे एक जिंदा दस्तावेज में परिवर्तित कर दिया है ||[8,9]

संविधान की सफलता का एक पक्ष और भी है | संविधान आज की भारतीय राजनीति का मूल वैचारिक स्रोत है | संविधान के नाम पर ही राजनीतिक दलों की विचारधाराओं का निर्माण और पुनर्निर्माण होता है, संविधान के नाम पर ही किसी भी राजनीतिक अमल को सही या गलत ठहराया जाता है, संविधान के नाम पर ही शासन होता है और दिलचस्प तो यह है कि संविधान के नाम पर ही शासन का राजनीतिक विरोध भी होता है | कहा जा सकता है कि भारतीय राजनीति के घालमेल में संविधान एक मुहावरा है, जिसके जरिये राजनीति की स्वीक्रत जबान का निर्माण होता रहा है |

संविधान के इस महिमागान के बीच राजनीतिक नैतिकता का सवाल अहम है | अगर हमें किसी राजनीतिक मुद्दे पर अपनी असहमति जतानी हो तो क्या वह जरूरी है कि पहले हम संविधान की कसम खाएं, फिर भारत की प्रभुसत्ता की रक्षा का दवा करें, फिर संविधान के किसी अनुच्छेद की दुहाई दें और फिर भी काम न बने तो माननीय सर्वोच्च न्यायालय का हवाला दें ? मेरा मत है कि संविधान के मूल्यों की रक्षा का अर्थ राज्य संस्थाओं की संरचनाओं और उनके व्यवहारों की अंध-भक्ति नहीं है |

यहीं आकर गांधी बेहद प्रासंगिक हो जाते हैं | वे अपने पूरे राजनीतिक जीवन में इस तरह के सवालों से उलझते रहे | उनका राजनीतिक विमर्श सत्ता के साथ सत्याग्रही संबंध और स्वराज की आजाद समझ की परिधि के बीच निर्मित होता है | 1921 में वायसराय ने जब कहा था कि भारत में स्वराज तलवार के बल आ सकता है या फिर ब्रिटिश संसद की दरियादिली की वजह से, तब गांधी ने लिखा था :

"वायसराय के इस विचार से मेरा पूर्णत: मतभेद है कि यदि स्वराज तलवार की शक्ति से नहीं आता तो वह अवश्य ही ब्रिटिश संसद की ओर से आएगा | जब लोगों की इच्छा की 'तलवार' अदम्य हो जाएगी तब ब्रिटिश संसद उसकी पुष्टि करेगी | असहयोगी इस्पात की तलवार के बदले आत्मोत्सर्ग की तलवार को प्रयोग में लाने का प्रयास कर रहे हैं, यह जानने के लिए हमें अधिक काल तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी |"

गांधी के विचार में ब्रिटिश संसद का काम स्वराज की जन-भावना को मंजूरी देना भर है ताकि परिवर्तन की संस्थागत गतिशीलता बनी रहे | यहां यह बताना जरूरी है कि स्वराज की जन-भावना का अर्थ बहुसंख्यक समुदाय की इच्छा नहीं है | गांधी 'हिंद स्वराज' में साफ कहते हैं कि स्वराज का अर्थ नंबर गेम नहीं है | उनका मत है कि सिर्फ इसलिए कि भारत में हिंदुस्तानी ज्यादा हैं और अंग्रेज कम, भारत में स्वराज आना चाहिए, गलत धारणा है |

स्वराज का अर्थ है सत्य और अहिंसा के आधार पर सामाजिक पुनर्निर्माण और राजनीति में मूलभूत परिवर्तन | स्वराज की इस रूपरेखा में स्थानीय निकायों (जैसे नगरपालिका) से लेकर ब्रिटिश संसद तक सभी लोकतांत्रिक संस्थाओं का अपना विशिष्ट स्थान है | गांधी इन संस्थाओं को उनके जन-प्रतिनिधित्व करने के दावे की वजह से स्वीकारते हैं | लेकिन इन संस्थाओं में निहित विधायी और कार्यकारी शक्तियां उनके लिए कोई खास नैतिक मूल्य नहीं रखतीं | यही कारण है कि गांधी खुद को व्यावहारिक आदर्शवादी बताते हैं :

"मैं खुद को व्यावहारिक आदर्शवादी मानता हूं | मेरा निजी मत है कि विधायिका स्वराज लाने का जरिया नहीं हो सकती |"[9,10]

"मैं खुद को एक व्यावहारिक आदर्शवादी मानता हूं | मैं जनता के संदर्भ में स्वराज प्राप्त करने के साधन के रूप में विधानसभाओं में अपना अविश्वास बरकरार रखूंगा |" (ए.आइ.सी.सी. में भाषण, पटना- 1 मई 1934)

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 6, Issue 7, July 2019 |

गांधी द्वारा विधायिका में अविश्वास व्यक्त करने के अर्थ यह नहीं है कि वे लोकतंत्र के समर्थक नहीं हैं | 1928 में जब देश में ब्रिटिश विरोध अपने चरम पर था, गांधी ने 'यंग इंडिया' में लिखा था:

"अगर हम लोकतंत्र की भावना को विकसित करना चाहते हैं तो हमें सुनिश्चित करना होगा कि हमारा दृष्टिकोण अपने मुखालिफ के प्रति कैसा हो | हमें सरकार की गुलामी खत्म करके असहयोगियों और सरकार के मुखालिफों की नई गुलामी कायम नहीं करनी है | हम अपने मुखालिफ के लिए भी वही आजादी चुनें, जिसके लिए हम संघर्ष कर रहे हैं |"

गांधी का संघर्ष लोकतंत्र की भावना के लिए है, वे उस राजनीतिक संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं जिसमें सेवाभाव और दयाधर्म हो | यही कारण है कि 1937 के अपने एक अन्य भाषण में गांधी संस्थाओं के संविधान, उनके नियम उपनियम और उनको चलाने वालों के व्यवहारों के फर्क को उजागर करते हैं |

गांधी की ये बातें कोरी लफ्फाजी नहीं हैं न ही एक लाचार बूढ़े की सलाह | 1946 तक आते-आते यह लगभग तय हो गया था कि भविष्य का भारत ब्रिटिश संसदीय मॉडल को अपनाएगा | इस परिप्रेक्ष्य में गांधी इस बात को भांप रहे थे कि भविष्य की संसद एक पेशेवर राजनीतिक संस्था बन सकती है और भविष्य के चुने हुए प्रतिनिधि पेशेवर नेता | इस खतरे से निबटने के लिए गांधी एक व्यावहारिक सलाह देते हैं :

"विधायक सरकार की नीतियों को पारदर्शी बनाने का काम कर सकते हैं | यह उनकी सबसे बुनियादी सेवा होगी पर उनका प्रमुख कर्तव्य तो यह है कि वे आमलोगों को बताएं कि सरकार की कमियों को जानने के बावजूद वे क्यों और कैसे सरकारी नीतियों के शिकार हो जाते हैं, वे जनता को जागरूक करें और उसे सरकार की अन्यायपूर्ण और गलत नीतियों के खिलाफ खड़े होने के लिए शिक्षित करें | विधायकों का दूसरा काम जन-विरोधी कानूनों को बनने से रोकना है और ऐसे कानून बनाने का मार्ग खोलना है जो तामीरी काम में मददगार हो |"

गांधी के इस कथन से साफ जाहिर है वे प्रतिनिधित्व के सवाल को महज कानून बनाने तक सीमित करके नहीं देखते | उनके लिए विधायकों का काम जन चेतना की नुमाइंदगी करना है | यहां तक कि अगर कोई चुनी हुई सरकार जन विरोधी काम करे तो वे जनता को सरकार के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार करें |

सवाल पूछा जा सकता है ऐसे विधायकों की खोज करने के बजाय गांधी ने स्वयं संविधान-निर्माण में हिस्सा क्यों नहीं लिया ? वे क्यों नहीं सरकार में शामिल होकर सरकार चालाने लगे ? दिसंबर 1947 में हिंदुस्तानी तालीम संघ की एक बैठक में डॉ. जाकिर हुसैन ने गांधी से यही सवाल पुछा था :

"डॉ. जाकिर हुसैन: विभिन्न संस्थाएं कुछ विशेष कार्य करने के लिए तदर्थ समितियों के रूप में अलग-अलग बनाई गई थीं | यदि अब उन्हें मिलाकर एक संस्था बना दिया गया तो उस संस्था को सत्ता की राजनीति से दूर रखना असंभव होगा ?"

"गांधीजी: यदि संयुक्त रचनात्मक कार्यकर्ता संघ सत्ता की राजनीति में पड़ने की कोशिश करेगा तो उसका सर्वनाश हो जाएगा | अन्यथा क्या मैं स्वयं सत्ता की राजनीति में घुसकर सरकार को अपने तरीके से चलाने का प्रयाक न करता ? आज जो सत्ता की बागडोर संभाले हैं, वे आसानी से अलग हो जाते और मुझे अपनी जगह दे देते लेकिन जब तक सत्ता उनके अधिकार में है, वे अपने ही विवेक के अनुसार कार्य कर सकते हैं | मगर मैं सत्ता अपने हाथ में लेना नहीं चाहता | हम सत्ता से परे रहकर और मतदाताओं की शुद्ध नि:स्वार्थ सेवा करके उनका मार्गदर्शन करते हुए उन पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं | ऐसा करके हम उससे कहीं अधिक सच्ची सत्ता प्राप्त कर सकेंगे, जो हमें सरकार में शामिल होने पर प्राप्त होगी | मगर एक वक्त ऐसा आ सकता है जब लोग यह महसूस करें और कहें कि वे चाहते हैं कि कोई और नहीं बल्कि हम ही सत्ता संभालें | तब इस सवाल पर विचार किया जा सकेगा | बहुत संभव है कि मैं तब तक जीवित ही न रहूं | लेकिन जब ऐसा समय आएगा तब संघों में से कोई ऐसा व्यक्ति जरूर आएगा जो शासन की बागडोर संभालेगा | उस समय तक भारत एक आदर्श राज्य बन जाएगा |

"डॉ. जाकिर हुसैन : काय हमें एक आदर्श राज्य का शुभारंभ करने और उसे चलाने के लिए आदर्श पुरुषों की आवश्यकता नहीं होगी ?"[1]

"गांधीजी : हम स्वयं सरकार में शामिल हुए बिना भी अपनी पसंद के लोगों को सरकार में भेज सकते हैं | आज कांग्रेस में हर आदमी सत्ता के पीछे भाग रहा है | यह बहुत बड़े खतरे का संकेत है | हमें सत्ता-लुप्सुओं की भागदौड़ में शामिल नहीं होना चाहिए |"

गांधी की इस समझ में मतदाता संसदीय लोकतंत्र नामक मशीन का पुर्जा नहीं है | उनके लिए वोटर सत्याग्रही है | इस सत्याग्रही को संगठित करने के लिए वे संसद के बाहर रहकर जन-संस्थाओं के निर्माण का आह्वान करते हैं ताकि लोकतंत्र की सच्ची भावना की कवायद जारी रहे |

यहां इस बात का जिक्र जरूरी है कि गांधी का सत्याग्रही वोटर न तो नेहरुवादी कांग्रेस का वह आम आदमी है, जिसे मॉडर्न बनाना लाजिमी है और न ही 'टाटा टी' के विज्ञापन में आने वाला जागरूक मतदाता | उनके लिए राजनीतिक अधिकारों की पहचान एक प्रक्रिया है, जिसके जरिये दया-धर्म पर आधारित व्यापक स्वतंत्रता को आम जिंदगी में हासिल किया जा सकता है | वोटर और उनके

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 6, Issue 7, July 2019 |

द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के इसी रिश्ते को गांधी 1937 के अपने एक भाषण में बेहद सटीक तरीके से बताते हैं | 1935 के अधिनियम के विशेष संदर्भ में दी गई इस तकरीर में वे कहते हैं:

"अब इस पर एक और दृष्टी से विचार कीजिए | विधान-मंडलों में लोग एक निश्चित, सीमित संख्या में ही सदस्य बनकर जा सकते हैं, शयद पंद्रह सौ ही सदस्य बन सकते हैं | यहां उपस्थित लोगों में से कितने लोग उनके सदस्य बन सकते हैं ? और फिलहाल इन पंद्रह सौ सदस्यों के लिए मतदान करने का अधिकार केवल साढ़े तीन करोड़ लोगों को ही प्राप्त है | शेष साढ़े इकतीस करोड़ से अधिक लोगों का क्या होगा ? स्वराज की हमारी संकल्पना के अनुसार तो ये साढ़े इकतीस करोड़ ही देश के साचे मालिक हैं और ये साढ़े तीन करोड़ मतदाता, जो पंद्रह सौ विधायकों का भाग्य करेंगे, उसके सेवक ही हैं | इस प्रकार पंद्रह सौ विधायक यदि अपने विश्वास के प्रति सच्चे रहें तो वास्तव में ये समूची जनता के दोहरे सेवक होंगे |

लेकिन साढ़े इकतीस करोड़ लोगों को स्वयं अपने प्रति, और व्यक्तियों के रूप में वे जिसके अंश हैं उस राष्ट्र के प्रति भी, अपने दायित्व का निर्वाह करना है | यदि वे स्वयं काहिल बने रहे और उन्होंने यह जानने-समझने की कोशिश नहीं की कि स्वराज्य क्या है और उसे कैसे हासिल किया जा सकता है, तो वे पंद्रह सौ विधायकों के गुलाम बनकर रह जाएंगे | इस हिसाब से साढ़े तीन करोड़ मतदाता भी साढ़े इकतीस करोड़ आम जनता की श्रेणी में ही आते हैं | इसलिए कि यदि वे मेहनती और जागरूक न बने, तो वे भी पंद्रह सौ खिलाड़ियों के हाथ में, आम जनता की भांति, खिलौने-भर बनकर रहे जाएंगे | फिर वे खिलाड़ी कांग्रेसी विधायक हों या अन्य किसी दल के, इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता | यदि मतदाता हर तीन साल या ऐसी ही किसी अवधि के बाद केवल अपना मतदान करने के लिए ही आंखें खोलें और उसके बाद फिर से सो जाएं, तो उनके सेवक ही उनके मालिक बन बैठेंगे |

"ऐसी विपत्ति से बचने का एक ही उपाय मैं जानता हूं - कि सभी पैंतीस करोड़ लोग मेहनती और समझदार बनें | ऐसा तभी हो सकेगा जब वे चरखे और अन्य ग्रामोधोगों को अपना लें | वे इनको बिना समझे-बूझे न अपनाएं | मैं अपने अनुभव से आपको बतला सकता हूं कि ऐसा प्रयत्न करने का अर्थ है - सही किस्म की वयस्क शिक्षा देना और इसके लिए जरूरी है धैर्य, नैतिक मनोबल और अपनी पसंद के जिस भी गांव में, आप जो भी धंधा शुरु करना चाहते हों उसकी वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक जानकारी हासिल करना |"

मैंने पहले कहा है कि गांधी के विचारों से सूत्र विचार निकालना गांधी की अपनी पद्धति के विरुद्ध जाता है | इसलिए अगर लोकतांत्रिक संस्थाओं और सत्याग्रही आंदोलन से संबंधित गांधी के विचारों को, जिनकी चर्चा हमने यहां की है, समेटें तो एक चारपक्षीय वक्तव्य अभिव्यक्त किया जा सकता है :[3,4]

1. स्वराज के लिए किए जाने वाले संघर्ष का मकसद लोकतंत्र की सच्ची भावना का निर्माण है ताकि एक जिम्मेदार राजनीतिक संस्कृति पैदा हो सके |
2. संविधान जैसे कानूनी दस्तावेज तभी जिंदा होते हैं जब उनमें निहित मूल्यों के आधार पर अमल और व्यवहार हो | ऐसा न होने की स्थिति में संविधान के मूल्य निरर्थक हो जाते हैं |
3. विधायक का दायित्व सिर्फ कानून बनाना नहीं है | यदि सरकार जन-विरोध का कोई काम करती है तो विधायक का फर्ज है कि वे जनता को सरकार का विरोध करने के लिए प्रेरित करें |
4. लोकतांत्रिक संस्थाओं में भागीदारी जरूरी है | लेकिन सिर्फ इस भागीदारी के जरिये लोकतंत्र को परिभाषित करना गलत है | वोटर का धर्म सत्याग्रही का हिया | उसे समझदार होना होगा, अपने चुने हुए प्रतिनिधि पर नजर रखनी होगी |

यहां मैं फिर याद दिलाना चाहता हूं कि गांधी के सवाल और हमारे सवाल अलग हैं | गांधी के जवाब उनके अपने आज को मुखातिब करते हैं जबकि हमें अपने आज को अलग तरीके से संबोधित करना होगा | गांधी से जो हम ले सकते हैं वह है उनकी प्रयोगधर्मिता; और यही गांधी को समकालीन बनाने के प्रयास का तीसरा कदम है |

गांधी की पद्धति से देखें तो साफ है कि विरोध की राजनीति के मूल मैं लोकतांत्रिक भावना छिपी हुई है | भारतीय संविधान की प्रस्तावना में वर्णित दावे इसी भावना को चरितार्थ करते हैं | इसलिए जन-विरोधी नीतियों का विरोध लोकतांत्रिक भी है, तर्कसम्मत भी है, और संवैधानिक भी |

लोकतांत्रिक विरोध को राष्ट्रद्रोह कहना संविधान की आत्मा और सत्याग्रह के विचार का अपमान है | चुनाव जीत कर आए हमारे प्रतिनिधि भूल जाते हैं कि उनका काम पार्टी-पूजा और नेता-पूजा नहीं है | जब वे संविधान की शपथ लेते हैं तो वह संविधान के मूल्यों और सिद्धांतों को अपनाने की शपथ होती है, न कि राज्यसत्ता भोगने का पांच साल का कांट्रैक्ट, क्योंकि संसद का काम जन-विरोध का संस्थागत विरोध करना है |

विरोध करने के इस रैडिकल आह्वान का एक दूसरा पहलू भी है, जो विरोध की नैतिकता से ताल्लुक रखता है | विपक्ष में मौजूद दल संविधान का इस्तेमाल विरोध करने के लिए करते ही हैं | लेकिन यह पेशेवर विरोध, सत्ता सुख के लिए होता है, न कि जन भावना को अभिव्यक्त करने के लिए | संसद में विपक्ष द्वारा नोटबंदी और जीएसटी पर जताए गए पेशेवर विरोध के बावजूद अगर देश में पनप रही आर्थिक मंदी राजनीतिक सवाल नहीं बन पाती है तो साफ है कि विपक्ष का विरोध जनता की भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं कर

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 6, Issue 7, July 2019 |

रहा है | गांधी के चश्मे से देखें तो (शर्त यह है कि चश्मा 'स्वच्छ भारत अभियान' के विज्ञापन में दिखने वाला नहीं होना चाहिए !) यह कहा जा सकता है कि विरोध करने के लिए विरोध करना, व्यक्ति या समुदाय की कुछ मांगो को मनवाने के लिए विरोध करना, और सत्ता-प्राप्ति के लिए विरोध करना सत्याग्रही विरोध नहीं हो सकता | सयाग्रही विरोध दूसरों को ज्ञान बांटने, राजनीतिक रोडमैप बनाने और देने, 'संकल्प से सिद्धि' जैसे नारों और राजनीतिक जुमलेबाजी का नाम नहीं है |

यही बात लोकतंत्र की आज की समझ से भी जुड़ती है | लोकतंत्र का अर्थ चुनाव बाजार नहीं है, जिसमें राजनीतिक दल अपने ब्रांड और अपने चुनावी वायदे लेकर वोटर को उपभोक्ता की तरह लुभाते हैं, न ही चुनाव जीतने की क्षमता, जिसे आजकल

'विनेबिलिटी' कहा जाता है, जनमत होती है |

तो फिर सत्याग्रही विरोध का आज का मुहावरा क्या हो सकता है ? यही गांधी की समकालीनता को पाने का चौथा कदम है जिसकी ओर हमने शुरुआत में इशारा भर किया था | इस सवाल का जावाब देना किसी एक व्यक्ति या संस्था का काम नहीं है | गांधी की मानें तो इस सवाल का जवाब इतिहास में तलाशना निरर्थक होगा |

वैचारिक चक्रव्यूह से निकलने के लिए 'क्या है' और 'क्या होना चाहिए' के बीच फर्क करना जरूरी है | हम सभी यह बताने में तत्पर रहे हैं कि क्या होना चाहिए लेकिन जिस आज में हम रहते हैं उसकी पेचीदगियों को जानने-समझने की लिए हम तैयार नहीं हैं | हमें लगता है कि आज से हम पूरी तरह बा-खबर हैं और मसला सिर्फ भविष्य का है | गांधी इस तथ्य के सख्त मुखालिफ थे | इसीलिए, मुझे ऐसा लगता है कि हमें अपने आज को सामूहिक प्रयास से जानना चाहिए |

शायद तब मुमकिन है कि दया-धर्म के कुछ नए मायने सामने आएं | शायद तब बिस्मिल्लाह पढ़कर बात शुरु करने और गीता के श्लोक से बात खत्म करने के बावजूद महंगाई, भूखमरी और जन अधिकारों की रौडिकल चर्चा की जा सके |

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत;

अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ||[4,5]

परिणाम

भारतीय राजनीतिक चिन्तन में महात्मा गांधी का एक अति महत्वपूर्ण स्थान है। महात्मा गांधी का दर्शन बहुमुखी है। उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र को स्पर्श किया है। यद्यपि उनके विचार प्लेटो, अरस्तु, हॉब्स व लॉक आदि राजनीतिक विचारकों की तरह क्रमबद्ध नहीं है, लेकिन फिर भी अनेक विद्वान उन्हें एक उच्चकोटि का राजनीतिक विचारक मानते हैं। उन्होंने महात्मा महात्मा बुद्ध व सुकरात की तरह जीवन भर सत्य की खोज में समय व्यतीत किया तथा सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों पर आधारित राजनीति के व्यावहारिक पहलू पर जोर दिया।

उनके विचारों में क्रमबद्धता न होने के कारण अनेक विचारकों ने उन्हें एक राजनीतिक विचारक मानने से इन्कार किया है। लेकिन आज भी उनके राजनीतिक विचारों को अस्तित्व स्वीकार किया जाता है।

उनके दर्शन को, 'गांधीवाद' आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। इससे उनके राजनीतिक विचारक होने में कोई सन्देह शेष नहीं रह जाता है। सत्य तो यह है कि उनके द्वारा राजनीतिक जीवन में प्रयोग किए सिद्धांत को ही उनकी राजनीतिक विचारधारा है और वे स्वयं एक उच्च कोटि के राजनीतिक विचारक हैं।

महात्मा गांधी का जीवन परिचय

गाँधी जी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 ई. को सौराष्ट्र के काठियावाड़ के पोरबन्दर नामक नगर में हुआ । उनके पिता करमचन्द गाँधी रियासत के दीवान थे । बालक मोहनदास के जीवन पर उनकी माता पुतलीबाई का अधिक प्रभाव था, यही कारण है कि वे एक आदर्शवादी, मानवतावादी, आध्यात्मवादी तथा कर्मवादी थे । उनमें अपूर्व समन्वयात्मक शक्ति थी । उनका विवाह 13 वर्ष की आयु में कस्तूरबा से हो गया था । वे हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद 19 वर्ष की आयु में बैरिस्टरी (वकालत) की पढ़ाई करने इंग्लैण्ड गये। सन् 1887 से सन् 1891 तक वे बड़े संयम से इंग्लैण्ड में रहे और सन् 1891 में वे बैरिस्टर बनकर भारत लौट आए । शुरू में उन्होंने राजकोट में वकालत प्रारम्भ की कुछ समय बाद वे वकालत करने बम्बई चले गये परन्तु वहाँ कोई विशेष सफलता नहीं मिली । यहीं उनका सम्पर्क एक धन-सम्पन्न मुस्लिम व्यापारी से हुआ जिसका दक्षिण अफ्रीका में व्यापार-व्यवसाय फैला हुआ था। उस व्यापारी के विशेष आग्रह पर उसकी फर्म के मुकदमों की पैरवी के लिये व्यापार संस्थान के कानूनी सलाहकार के रूप में सन् 1893 में गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका चले गये ।

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 6, Issue 7, July 2019 |

महात्मा गांधी के राजनीतिक विचार

महात्मा गांधी के राजनीतिक विचारों का वर्णन उनके राजनीतिक विचारों को इन शीर्षकों के अन्तर्गत बांटा जा सकता है-

1. राजनीति का आध्यात्मीकरण
2. महात्मा गांधी के अहिंसा का सिद्धांत
3. महात्मा गांधी के साध्य और साधनों का सिद्धांत
4. महात्मा गांधी के सत्याग्रह का सिद्धांत
5. महात्मा गांधी के राज्य का सिद्धांत
6. महात्मा गांधी के सर्वोदय का सिद्धांत

सत्याग्रह पर महात्मा गांधी के विचार / सत्याग्रह का सिद्धांत[5,6]

महात्मा गांधी ने अपने अहिंसा के सिद्धांत को व्यावहारिक रूप देने के लिए जिस उपाय का प्रयोग किया, वह सत्याग्रह है। उनका यह सिद्धांत सत्य की अवधारणा पर आधारित है। सत्य के प्रबल समर्थक होने के नाते गांधी जी का मानना था कि सत्य के मार्ग पर चलकर ही व्यक्ति पूर्ण विकास का लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। गांधी जी ने सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग दक्षिणी अफ्रीका में किया। इसे वहां पर निष्क्रिय प्रतिरोध का नाम दिया गया। लेकिन गांधी जी ने इस बात को स्पष्ट किया कि सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध अलग-अलग है। सत्याग्रह शुद्ध अहिंसक साधनों पर आधारित तकनीक है। इसमें हिंसा के लिए कोई जगह नहीं है। सत्य इसका आधार है। इसमें आत्मबल रूपी शस्त्र का ही प्रयोग किया जाता है। यह एक आदर्श है, कर्म योग का एक व्यावहारिक दर्शन है और एक क्रियाशील अवधारणा है।

दार्शनिक आधार –

गांधी जी ने 'शक्तिशाली की विजय' के जैविक सिद्धांत तथा हॉब्स के विचार-'प्रत्येक एक-दूसरे के सिरुद्ध संघर्षरत रहता है' का खण्डन किया है। गांधी जी मानव स्वभाव का वर्णन करते हुए कहता है कि मनुष्य प्रारम्भ से ही अहिंसा प्रेमी रहा है। वह पारस्परिक सहायता व सहयोग में विश्वास करता हैं वह वेद-शास्त्रों के मार्ग का अनुसरण करता है। कोई भी व्यक्ति या शासक कितना निर्दयी क्यों न हो, उसमें भी मनुष्यता, करुणा, परोपकार तथा दया की भावना अवश्य पाई जाती है। सत्याग्रह द्वारा अत्याचारी मनुष्य की सोई हुई आत्मा को जगाया जा सकता है। एक समय ऐसा आता है, जब अत्याचारी की आत्मा अवश्य जागृत होती है। बुराई को बुराई से कभी दूर नहीं किया जा सकता। प्रेम से ही अत्याचारी व अन्यायी पर काबू पाया जा सकता है। घृणा, घृणा को जन्म देती है। मानव के दु:खों का कारण घृणा है। असत्य का सामना सत्य से करके ही मानवता को सुख प्रदान किया जा सकता है।

गांधी जी का यह सिद्धांत इस बात में विश्वास करता है-''हम सब एक-दूसरे के सदस्य हैं'' मनुष्य को ईश्वर के सभी व्यक्तियों की भलाई करनी चाहिए। सबकी भलाई में ही उसकी भलाई निहित है और उसके साथ कभी अच्छा नहीं हो सकता। इसलिए व्यक्ति को बुराई दूर करने के लिए अच्छाई का ही मार्ग अपनाना चाहिए। हिंसा, युद्ध, कुटिल राजनीति कभी भी शांति का साधन हीं हो सकते। अहिंसा, प्यार और सत्य ही समस्याओं के समाधान के स्थाई उपाय हैं यही सत्याग्रह के सिद्धांत का सन्देश है और मानवता के सुख का आधार है।

सत्याग्रह का अर्थ

साधारण शब्दों में सत्याग्रह-सत्य + आग्रह दो शब्दों के मेल से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है-सत्य पर आरुढ़ रहकर बुराई का विरोध करना। यह असत्य का विरोध है व हर अवस्था में सत्य को पकड़े रहना है। हिंसा, भय और मृत्यु इसे विचलित नहीं कर सकते। यह सत्य के लिए एक तपस्या है। गांधी जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' में इसे 'आत्मा का बल' भी कहा है।[6,7]

सत्याग्रह का अर्थ है-''सत्य पर आग्रह करते हुए अत्याचारी का प्रतिरोध करना, उसके सामने सिर न झुकाना तथा उसकी बात को न मानना।'' यह आत्मबल का शारीरिक बल अथवा पशुबल के साथ संघर्ष है। यह सभी प्रकार के अन्याय और शोषण के विरुद्ध आत्मा की शक्तिका प्रयोग है। इसका उद्देश्य विरोधी को दबाना नहीं है, बल्कि उसका हृदय परिवर्तन करना है। इस प्रकार सत्याग्रह विरोधी का हृदय परिवर्तन करने की कार्यवाही है। इसके लिए हिंसात्मक साधनों या किसी प्रकार के दबाव का प्रयोग वर्जित होता है।

गांधी जी ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है-''सत्याग्रह से अभिप्राय विरोधी को पीड़ा या कष्ट देकर नहीं, बल्कि स्वयं कष्ट सहकर सत्य पर डटे रहना अथवा सत्य की रक्षा करना है।'' दूसरे शब्दों में कह सकते हैं-''सत्याग्रह रक्षा है, यह रक्षा विरोधियों को कष्ट देकर नहीं, बल्कि स्वयं कष्ट सहकर की जाती है। यह सच्चाई के लिए तपस्या के अतिरिक्त कुछ नहीं है।' जी0एन0 धवन के अनुसार-''सत्याग्रह अहिंसक साधनों द्वारा सत्यपूर्ण लक्ष्यों के लिए निरन्तर प्रयत्न है।'' वी0पी0 वर्मा के अनुसार-''सत्याग्रह का अर्थ अन्याय, अत्याचार और शोषण के विरुद्ध शुद्ध आत्म-शक्ति का प्रयोग है।'' कृष्णलाल श्री धारणी ने इसे 'अहिंसक कार्यवाही' कहा हे। एन0 के बोस ने इसे 'अहिंसक तरीकों द्वारा युद्ध का संचालन करने का तरीका' कहा है। साधारण रूप में यह 'सत्य के लिए तपस्या' है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सत्याग्रह सब प्रकार के अन्याय, उत्पीड़न और शोषण के विरुद्ध विशुद्ध आत्मबल का प्रयोग है, जिसमें हिंसा का प्रयोग लेशमात्र भी नहीं होता। इससे विरोधी का हृदय परिवर्तन इस तरह से किया जाता है कि दूसरा स्वत: ही सत्याग्रह के नियमों में विश्वास करने लगता है। राजनीतिक शब्दावली में इसे अपनी बात शांतिपूर्ण तरीके से मनवाने का शांतिपूर्ण शस्त्र भी कहा जा सकता है।

निष्कर्ष

सत्याग्रह की विशेषताएं

गांधी जी ने 'यंग इण्डिया' और 'हरिजन' पत्रिकाओं में सत्याग्रह सम्बन्धी अपने विचार प्रस्तुत किए। उनके आधारों पर सत्याग्रह की विशेषताएं हैं:-

1. सत्याग्रह आत्म-बल का प्रयोग है – गांधी जी का कहना है कि सत्याग्रह में पाश्विक या शारीरिक बल की बजाय आत्म-बल का ही प्रयोग किया जाता है। आत्म-शक्ति शारीरिक शक्ति से अधिक शक्तिशाली होती है। कोई भी व्यक्ति कितना ही अत्याचारी व अन्यायी क्यों न हो, उसे भी आत्मबल से जीता जा सकता है। सत्याग्रह आत्म-बल रूपी शस्त्र से विरोधी का हृदय परिवर्तन करने का प्रयास करता है। वह बुराई को अच्छाई से, क्रोध को प्यार से, असत्य को सत्य से तथा हिंसा को अहिंसा से जीतने पर बल देता है। सत्याग्रह आत्म-बल पर आधारित नैतिक शस्त्र होने के नाते अधिक प्रभावशाली होता है। सच्चा सत्याग्रही अपने विरोधी को कष्ट देने की बजाय प्यार से उसे अच्छे-बुरे का भेद कराकर उसे न्याय की ओर प्रेरित करता है। इस तरह यह आत्म-बल द्वारा अत्याचारी के हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया है।

2. स्वयं कष्ट सहना सत्याग्रह का अनिवार्य भाग है – गांधी जी का मानना है कि सत्याग्रह में सत्याग्रही स्वयं कष्ट सहकर दूसरों का हृदय जीत सकता है। सत्याग्रह का यह आवश्यक नियम है कि एक सच्चा सत्याग्रही स्वयं कष्ट उठाए, दूसरों को कष्ट न दे। स्वयं कष्ट भोगना तथा अन्याय का विरोध करना ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह स्वार्थ पर आधारित नहीं होता। सत्याग्रही परमार्थ हेतु स्वयं कष्ट उठाकर सत्य व न्याय की रक्षा करता है। सच्चा सत्याग्रही वही होता है जो समस्त दु:खों को स्वयं सहे और समस्त सुखों को प्राणीमात्र की भलाई के लिए अर्पित कर दे। सत्याग्रही पर जितने अधिक दु:ख आते हैं, वह जितने अधिक दु:ख सहता है, उसी से वह पूर्णता की तरफ अग्रसर होता है। जिस तरह सोना आग में तपकर कुन्दन बनता है, उसी तरह अधिक से अधिक कष्टों के माध्यम से गुजरकर सच्चा सत्याग्रही तैयार होता है। यही सत्याग्रह का अटल व शाश्वत् नियम है। दु:खों से ही सुखों का जन्म होता है। कोई भी देश दु:खों के बिना सुख नहीं भोग सकता। भारत ने कष्ट सहकर की स्वतन्त्रता का आनन्द उठाया है। आत्मपीड़न ही सत्याग्रह के सिद्धांत का आधार है। जो कष्ट सहता है या आत्मपीड़न से गुजरता है, वही सुखों को भोगता है। इससे उसकी आत्मा पवित्र होती है। जनता उसके पक्ष में होकर उसी को औचित्यपूर्ण ठहराती है।[7,8]

3. सत्याग्रह विरोधी के हृदय को विवेक तथा अपील से बदलता है – सत्याग्रह में विरोधी को अपनी बात मनवाने के लिए किसी भय या दण्ड का प्रयोग वर्जित होता है। सत्याग्रह विवेक पर आधारित होता है। सत्याग्रही अन्यायी या अत्याचारी के हृदय को किसी कष्ट या दण्ड का भय दिखाकर नहीं बदलता, बल्कि उसक तर्क-बुद्धि के आधार पर हृदय परिवर्तन के लिए तैयार करता है। एक स्थिति ऐसी आ जाती है कि विरोधी व्यक्ति स्वयं यह अनुभव करता है कि वह गलत या अनुचित कार्य कर रहा है। वह स्वयं तर्क-बुद्धि के अनुसार अन्याय व अत्याचार का रास्ता छोड़कर न्याय की तरफ अग्रसर होने लगता है।

4. सत्याग्रह में हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं – गांधी जी का मानना है कि हिंसा को हिंसा से नहीं जीता जा सकता। प्रेम ही एक ऐसी वस्तु है जो पाश्विक बल को भी काबु कर सकती है। हिंसा से समाज में अराजकता पैदा होती है। अन्याय और अत्याचार कम होने की बजाय तेजी से बढ़ने लगते हैं। इसलिए अहिंसा ही एक ऐसा उपाय है जो समाज में व्याप्त हिंसा का नामोनिशान मिटा सकता है। गांधी जी ने कहा है-''अहिंसा मनुष्य के पास परमाणु बम से भी अधिक शक्तिशाली ब्रह्मास्त्र है।'' अत: सत्याग्रह में हिंसा के लिए कोई स्थान

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 6, Issue 7, July 2019 |

नहीं है।

5. सत्याग्रह प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है – गांधी जी का कहना है कि सत्याग्रह व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसकी उत्पत्ति राज्य से न होकर, आत्मा से हुई है। यह अधिकार होने के साथ-साथ एक कर्त्तव्य भी है। यदि कोई भी शासक या सरकार जन-कल्याण की उपेक्षा करने लग जाए या अन्यायी अत्याचारी हो जाए तो उसका विरोध करना प्रजा का परम कर्त्तव्य बन जाता है। लेकिन विरोध हर परिस्थिति में अहिंसात्मक ही होना चाहिए।

6. सत्याग्रह का सार्वभौमिक प्रयोग – गांधी जी का मानना है कि सत्याग्रह जीवन के हर क्षेत्र में प्रयोग किया जा सकता है। इसका प्रयोग सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक सभी क्षेत्रों में निर्बाध रूप से किया जा सकता है। इस प्रकार इसमें सार्वभौमिकता का गुण भी विद्यमान है।

7. सत्याग्रह में खुला व्यवहार – गांधी जी कहना है कि सत्याग्रह में कुछ भी गुप्त नहीं रखा जाना चाहिए। सत्याग्रही का प्रत्येक कार्य जन समर्थक होना चाहिए। छिपाकर किया गया कार्य अविश्वास को जन्म देता है। इससे सत्याग्रह का उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है। गांधी जी ने कहा है-''जितने खुले रूप से आप बात करोगे उतने ही आप सत्यपूर्ण होंगे।'' इसमें छल-कपट, धोखा, बेईमानी आदि का समावेश नहीं होना चाहिए। इसी पर सत्याग्रह की सफलता निर्भर करती है।

8. अच्छे साध्य और अच्छे साधन – गांधी जी का मानना है कि सत्याग्रह में प्रयुक्त सभी साधन भी साध्य के अनुकूल ही होने चाहिए। यदि सत्याग्रह का लक्ष्य (साध्य) उचित है तो उसे प्राप्त करने में अच्छे साधनों का प्रयोग अपरिहार्य है। अच्छा साध्य अच्छे साधनों से ही प्राप्त किया जा सकता है। यदि सत्याग्रह सामाजिक हित के लक्ष्य (साध्य) को ध्यान में रखकर किया जाता है तो उसे अच्छे साधनों द्वारा सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। यदि साध्य ही गलत है तो अच्छे साधन भी असफल सिद्ध होते हैं।[8,9]

9. सत्याग्रह सामाजिक हित के लिए किया जाता है – गांधी जी के दर्शन में व्यक्तिगत हित की बजाय सामाजिक हित को प्राथमिकता दी गई है। गांधी जी का कहना है कि कोई भी सत्याग्रही आन्दोलन तभी सफल हो सकता है, जब वह सामाजिक हित की दृष्टि से किया जाए। स्वार्थ की भावना से किया गया सत्याग्रह सदैव निष्फल रहता है। जो बात न्याय व सत्य के विपरीत हो उसको सत्याग्रह से जीतना कठिन होता है। इसलिए गांधी जी ने सत्याग्रह का प्रयोग व्यक्तिगत हित की बजाय सामाजिक हित के लिए करने का समर्थन किया है।

आधुनिक समय में महात्मा गांधी की प्रासंगिकता

गांधी जी का जीवन दर्शन एक कर्मयोगी व व्यावहारिक राजनीति का है। यद्यपि उन्होंने किसी क्रमबद्ध सिद्धान्त या दर्शन का प्रतिपादन नहीं किया, लेकिन उनके विचार विश्व शान्ति के लिए प्रकश स्तम्भ है। उनका राजनीतिक चिन्तन उदारवाद और मानवतावाद पर आधारित होने के कारण सर्वहारा वर्ग के हितों का पोषक है। उनका राजनीति का आध्यात्मीकरण करने का विचार आज की राजनीतिक समस्याओं का समाधान करने व राजनीति को जनकल्याण का साधन बनाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण देन है। उनका सर्वोदय तथा अहिंसा का सिद्धांत विश्व-बन्धुत्व की भावना को बढ़ावा देने तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में मधुरता पैदा करने का अचूक शस्त्र है, इतना होने के बावजूद भी शांति के पुजारी तथा आध्यात्मिक के अग्रदूत व प्रणेता महात्मा गांधी के विचारों को अनेक राजनीतिक विचारक अव्यावहारिक व अप्रासांगिक मानते हैं। उनका कहना है कि गांधी जी के सिद्धांत आदर्श मात्र हैं, व्यावहारिक नहीं।

उनका सत्य व अहिंसा का सिद्धांत निस्सन्देह मूल्यवान व महत्वपूर्ण सिद्धांत है। परन्तु अब प्रश्न यह पैदा होता है कि आज के आणविक युग में इसकी क्या प्रासांगिकता है। आज प्रत्येक राष्ट्र अपने को सामरिक दृष्टि से सुरक्षित देखना चाहता है। दो विश्व युद्धों ने मानव को आतंक व भय के वातावरण में जीने के लिए जिस कद्र बाध्य किया है, उससे राष्ट्रीय सीमाओं की सुरक्षा आवश्यक व महत्वपूर्ण राष्ट्रीय हित का लक्ष्य बन गया है। इसलिए व्यवहार में इस सिद्धांत को लागू करना असम्भव है। कोई भी देश अहिंसा के सिद्धांत के सहारे अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा को नहीं छोड़ सकता। इसी तरह उनका रामराज्य का स्वप्न भी मात्र कपोल कल्पना है। कुटीर उद्योग वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रतिस्पर्धा के अनुकूल नहीं हो सकते। आज का युग विज्ञान का युग नए-नए आविष्कारों ने औद्योगिक प्रणाली को पूरी तरह यन्त्रचालित बना दिया है। महात्मा गांधी ने औद्योगिक क्षेत्र की जटिलताओं की तरफ ध्यान न देकर अव्यावहारिक होने का ही परिचय दिया है।

भारत पर हुए पाकिस्तान व चीनी हमलों ने भारत की शांतिप्रिय व अहिंसावादी नीति की जो मिट्टी पलीत की है, वह सर्वविदित है। आज भारत की शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति का जो करारा जवाब पाकिस्तान दे रहा है, उसके महात्मा गांधी के अहिंसावादी

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 6, Issue 7, July 2019 |

सिद्धांत की धज्जियां उड़ती प्रतीत होती हैं। इसलिए आज के वैज्ञानिक युग में जब चांद सितारों पर पहुंचने की होड़ लग रही हो तो सत्याग्रह और अहिंसा का सिद्धांत निरर्थक है। आज अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का मुकाबला अहिंसा के सिद्धांत के सहारे नहीं किया जा सकता। अत: आलोचकों की बात सही है कि महात्मा गांधी के विचार आधुनिक समय में अप्रासांगित व अव्यवहारिक है।

यद्यपि महात्मा गांधी के सिद्धांत वर्तमान समय में अव्यावहारिक लगते हैं, लेकिन गांधी जी ने अपने सिद्धान्तों में सत्य, प्रेम और उदारता के जो नियम बताएं हैं, वे शाश्वत् महत्व रखते हैं। यह सत्य है कि आज के वैज्ञानिक युग में आणविक शस्त्रों की छत्र-छाया में शांति के महात्मा गांधी द्वारा बताए गए उपाय निरर्थक मालूम होते हैं। लेकिन यदि मानतवा को तीसरे विश्व युद्ध के विनाश से बचाना है, तो महात्मा गांधी के सिद्धान्तों को महत्व देना होगा। आज सभी देश महसूस करते हैं कि विश्व के सामने महात्मा गांधी के शान्ति मॉडल के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय शेष नहीं है। यदि तीसरा विश्व युद्ध होता है तो सम्पूर्ण मानवता नष्ट होने के कगार पर पहुंच जाएगा। इस धरती से मानव सभ्यता का अस्तित्व ही लगभग समाप्त हो जाएगा। इसलिए आज यह आवश्यक है कि महात्मा गांधी के सिद्धान्तों को अपनाया जाए। [9,10]

प्रसिद्ध राजनीति शास्त्री गोपीनाथ धवन का कहना है-''युद्धवाद के पागलपन, आर्थिक और राजनैतिक केन्द्रीकरण और शान्तिप्रियता ने यह अनुभव करा दिया है कि हम महात्मा गांधी के गत्यात्मक सत्यों को समझें।'' आज तीसरे विश्व युद्ध की भ्यावह आशंका में सांस लेती मानवता और युद्ध के खतरों से घिरा हुआ समकालीन विश्व अपने भविष्य से लगातार आतंकित है। नाभिकीय युद्ध के परिणामों और विनाश के वैज्ञानिक निष्कर्ष उसकी विनाश की आशंका को पक्का कर रहे हैं। आज दुनिया बारुद के जिस ढेर पर बैठी हुई है और एक छोटी सी चिंगारी उसका विनाश करने के लिए पर्याप्त है। इसलिए आज गांधी जी के सिद्धान्तों को अपनाने का समय आ गया है। यदि आज विज्ञान हिंसा का साधन बन गया तो मानव सभ्यता की रक्षा करना असम्भव होगा। यदि हमें जीवित रहना है और नए संसार की रचना करनी है तो मानवता के भले के लिए हमें अहिंसात्मक उपायों का ही सहारा लेना पड़ेगा। अहिंसात्मक साधनों का प्रयोग करने से ही सर्वोदय समाज की स्थापना हो सकेगी और विश्व में बढ़ रही आर्थिक विषमता का भी अन्त हो जाएगा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि महात्मा गाधीं के विचार जितने प्रासांगिक व व्यावहारिक 1947 से पहले व 1947 में थे, आज भी बन सकते हैं, यदि उनको सच्चे हृदय से जीवन में उतारा जाए। आज विश्व में हो रहे नि:शस्त्रीकरण के उपाय महात्मा गांधी के शान्ति विचारों के ही पर्यायवाची हैं। अत: महात्मा गांधी के विचार आधुनिक युग में भी प्रासंगिक होने के साथ-साथ काफी महत्वपूर्ण व शाश्वत् महत्व के हैं।[10]

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1. महादेव देसाईअनाशक्तियोग : द गोस्पेल ऑफ़ सेल्फ्लेस एक्सन, या द गीता अकोर्डिंग तू गाँधी .नवजीवन प्रकाशन घर; अहमदाबाद (प्रथम संस्करण १९४६).अन्य संस्करण; १९४८, १९५१, १९५६.
2. ↑ देसाई की अतिरिक्त कमेन्ट्री के एक बड़े भागी को काटने के बाद एक छोटा संस्करण अनाशक्तियोग : द गोस्पेल ऑफ़ सेल्फ्लेस एक्सन के रूप में प्रकाशित किया गया। जिम रंकिन,सम्पादक. लेखक एम् के की सूची में आते हैं गाँधी; अनुवादक महादेव देसाई (ड्राई बोनस प्रेस, सन फ्रांसिस्को, १९९८) ISBN १ - ८८३९३८ - ४७ ३
3. ↑ सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड-21, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, संस्करण-1967, पृष्ठ-489.
4. ↑ सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड-39 (आत्मकथा), प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, संस्करण-1996, पृष्ठ-109.
5. ↑ सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड-57, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, संस्करण-1974, पृष्ठ-48,50.
6. ↑ सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड-57, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, संस्करण-1974, पृष्ठ-56.
7. ↑ महात्मा और कवि, सव्यसाचि भट्टाचार्य, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, संस्करण-2005, पृष्ठ-158-159.
8. ↑ सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड-57, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, संस्करण-1974, पृष्ठ-179.
9. ↑ वि.एन द्वारा अद्वितीय संचारक Archived 2007-08-04 at the Wayback Machine नारायणन जीवन सकारात्मकता के साथ, अक्टूबर-दिसम्बर २००२
10. ↑ सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड 10, प्रकाशन विभाग,भारत सरकार, पुनर्मुद्रित संस्करण-1995, पृष्ठ-6.